विज्ञप्ति।

अनेक धर्मात्मा भाई स्नान पूजादि करके मंदिरजीमें जाकर भक्तामर आदि स्तोत्रोंका पाठ भावपूर्वक किया करते हैं। पाठ करनेकी पुस्तक हस्त लिखितकी प्राप्ति न होनेसे अन्य जगहकी मांसके (सरेसके) बेलनसे छपी, सरेससे ही जिल्द बंधी हुई पुस्तक परसे ही (जिसके छूनेसे तन मन दोनों ही अपवित्र होजाते हैं) किया करते हैं इसकारण इस संस्थाने संस्कृत और भाषा दोनों प्रकारके गुटके अपने पवित्र प्रेसमें कपडेके बेलनसे छपाकर तैयार किये हैं। पाठ भी नित्य काममें आनेवाले बहुत शुद्ध करके छापे हैं। अतएव सब भाइयोंको इस पवित्र गुटके परसे ही नित्य पाठ करना चाहिये।

भाद्रपद कृष्णा तृतीया
वीर सं० २४५५।

आपका हितैषी—
पन्नालाल बाकलीवाल सुजानगढ़ निवासी.

भाषा पाठोंकी सूची ।

भाषा जैननित्यपाठसंग्रह ।

अथ भक्तामर भाषा ।

(स्वर्गीय पं० हेमराजकृत)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार ।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमोंआदि अवतार ॥ १ ॥

सुरनत मुकुट रतन छवि करें। अंतर पापतिमिर सब हरें ॥ जिनपद वंदों मनवचकाय। भवजलपतित-उधरनसहाय ॥ १ ॥ श्रुतपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव ॥ शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी बरनों गुनमाल ॥ विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। हो निलज्ज थुति-मनसा कीन। जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै। शशिमंडल बालक ही चहै ॥३॥ गुनसमुद्र तुमगुन अविकार। कहत न सुरगुरु पावै पार ॥ प्रलयपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरै को भुजबलवंतु ॥ ४ ॥

सो मैं शक्तिहीन थुति करूं । भक्तिभाववस कछु नहिं डरूं ॥
ज्यों मृग निज सुत पालन हेत । मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥
मैं शठ सुधीहँसनको धाम । मुझ तव भक्ति बुलावै राम ॥ ज्यों
पिक अंबकली परभाव । मधुऋतु मधुर करै आराव ॥ ६ ॥
तुमजस जंपत जन छिनमाहिं । जनमजनमके पाप नशाहिं ॥
ज्यों रवि उगै फटै ततकाल । अलिवत नील निशातमजाल ॥
तव प्रभावतैं कहूं विचार । होसी यह थुति जनमनहार ॥ ज्यों
जल कमलपत्रपै परै । मुक्ताफलकी दुति विस्तरै ॥ ८ ॥ तुम

गुन महिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुखपोष॥ पाप
विनाशक है तुमनाम। कमलविकाशी ज्यों रविधाम॥ ९॥
नहिं अचंभ जो होंहिं तुरंत। तुमसे तुमगुण बरनत संत॥
जो अधनीको आपसमान। करै न सो निंदित धनवान॥१०॥
इकटक जन तुमको अविलोय। और विषै रति करै न सोय॥
को करि छीरजलधिजलपान। क्षारनीर पीवै मतिमान॥११॥
प्रभु तुम वीतराग गुनलीन। जिन परमानु देह तुम कीन॥
हैं तितने ही ते परमानु। यातैं तुमसम रूप न आनु॥ १२॥

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार । सुरनरनागनयनमनहार ॥
कहां चंद्रमंडल सकलंक । दिनमें ढाक पत्रसम रंक ॥ १३ ॥
पूरनचंद जोति छबिवंत । तुमगुन तीनजगत लंघंत ॥ एक
नाथ त्रिभुवन आधार । तिन विचरत को करै निवार ॥१४॥
जो सुरतिय विभ्रम आरंभ । मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ॥
अचल चलावै प्रलय समीर । मेरुशिखर डगमगैं न धीर ॥१५॥
धूमरहित बाती गतनेह । परकाशै त्रिभुवन घर येह ॥ बात
गम्य नाहीं परचंड । अपर दीप तुम बलो अखंड ॥ १६ ॥

छिपहु न लुपहु राहुकी छाँहिं । जगपरकाशक हो छिनमाहिं ॥ घन अनवर्त्त दाह विनिवार । रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥ ॥ १५ ॥ सदा उदित विदलित मनमोह । विघटित मेघ राहु अविरोह ॥ तुम मुखकमल अपूरब चंद । जगत विकाशी जोति अमंद ॥ १८ ॥ निशदिन शशिरविको नहिं काम । तुम मुखचंद हरै तमधाम ॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज । सजल मेघ तो कौनहु काज ॥ १९ ॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं । हरि हर आदिकमें सो नाहिं ॥ जो दुति महारतनमें होय । काचखंड पावै नहिं सोय ॥ २० ॥

नाराच छंद।

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया। स्वरूप जाहिं देख वीतराग तू पिछानिया॥ कछू न तोहिं देखके जहां तुही विशेखिया। मनोग चित्तचोर और भूलहू न पेखिया॥२१॥ अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं। न तोसमान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं॥ दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै। दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै॥२२॥ पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो। कहैं मुनीश अंधकारनाशको सुभान हो॥

महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके । न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टालके ॥ २३ ॥ अनंत नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो । असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥ महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो । अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥ २४ ॥ तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं । तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं ॥ तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं । नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥ २५ ॥ नमों करूं जिनेश

तोहि आपदा निवार हो । नमो करूं सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो ॥ नमो करूं भवाब्धिनीरराशिशोषहेतु हो । नमो करूं महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥ २६ ॥

चौपई १५ मात्रा ।

तुम जिन पूरनगुनगन भरे । दोष गर्वकरि तुम परिहरे ॥ और देवगण आश्रय पाय । स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥ २७ ॥ तरुअशोकतर किरन उदार । तुमतन शोभित है अविकार ॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत । दिनकर दिपै

तिमिर निहनंत ॥ २८ ॥ सिंहासन मनिकिरनविचित्र । ता-
पर कंचनवरन पवित्र ॥ तुमतन शोभित किरनविथार । ज्यों
उदयाचल रवितमहार ॥ २९ ॥ कुंदपुहुपसितचमर दुरंत ।
कनक वरन तुमतन शोभंत ॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति ।
झरना झरै नीर उमगांति ॥ ३० ॥ ऊंचे रहैं सूर दुति लोप ।
तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं । मोती
झालरसों छवि लहैं ॥ ३१ ॥ दुंदुभि शब्द गहर गंभीर ।
चहुँदिशि होय तुम्हारे धीर ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनजन शिवसंगम

करै । मानो जय जय रव उच्चरै ॥ मंद पवन गंधोदक इष्ट । विविध कलपतरु पुहपसुवृष्ट ॥ ३३ ॥ देव करैं विकसित दल सार । मानों द्विजपंकति अवतार ॥ तुमतन-भामंडल जिनचंद । सब दुतिवंत करत है मंद ॥ ३४ ॥ कोटि शंख रवितेज छिपाय । शशिनिर्मलनिशि करै अछाय ॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत । परमधरम उपदेशनहेत ॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध । सबभाषागर्भित हितसाध ॥ ३५ ॥

दोहा—विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुतिमिलि चमकाहिं

तुमपद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥ ऐसी महिमा तुमविषै, और धरै नहिं कोय । सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागण होय ॥ ३७ ॥

षट्पद— मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं । तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै । ऐरावत सौ प्रबल, सकल जन भय उपजावै ॥ देखि गयंद न भय करै, तुमपदमहिमा छीन । विपतिरहित संपति सहित, वरतै भक्त अदीन ॥३८॥ अति

मदमत्त गयंद कुंभथल नखन विदारै। मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै॥ बांकी दाढ़ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीमभयानकरूप देखि जन थरहर डोलै॥ ऐसे मृगपति पग तलैं, जो नर आयो होय। शरण गये तुम चरनकी, बाधा करै न सोय॥३९॥ प्रलयपवनकर उठी आग जो तास पटंतर। बमैं फुलिंग शिखा, उतंग परजलैं निरंतर॥ जगत समस्त निगल्ल भसमकर हैगी मानों। तड़तड़ाट दवअनल, जोर चहुँदिशा उठानों॥ सो इक छिनमें उपशमै, नामनीर

तुम लेत । होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत ॥ ॥४०॥ कोकिलकंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता । रक्तनयन फुंकार, मारविषकण उगलंता ॥ फणको ऊंचो करै, बेग ही सनमुख धाया । तब जन होय निशंक, देख फणपतिको आया ॥ जो चांपै निज पांवतैं, व्यापै विष न लगार । नागदमनि तुम नामकी, है जिनकै आधार ॥ ४१ ॥ जिस रनमाहिं भयानक शब्द कर रहे तुरंगम । घनसम गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम ॥ अति कोलाहलमाहिं, बात जहँ नाहिं सुनीजै । राज-

नको परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥ नाथ तिहारे नामतैं सो छिनमाहिं पलाय । ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ॥ ४२ ॥ मारै जहां गयंद, कुंभ हथियार विदारै। उमगै रुधिर प्रवाह बेग जलसे विस्तारै ॥ होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे । तिस रनमें जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे ॥ दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक । तुमपदपंकज मन बसैं, ते नर सदा निशंक ॥ ४३ ॥ नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै । जामैं बड़वा अग्नि

दाहतैं नीर जलावै ॥ पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी । गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी ॥ सुखसों तिरै समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं । लोल कलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं ॥ ४४ ॥ महा जलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं । बात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहे हैं ॥ सोचत रहैं उदास नाहिं जीवनकी आशा । अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधनिवासा ॥ तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निजअंग । ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें

होय अनंग ॥ ४५ ॥ पांव कंठतैं जकर बांध सांकल अति भारी । गाढ़ी बेड़ी पैरमांहि, जिन जांघ विदारी । भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे बिललाने । सरन नाहिं जिन कोय, भूपके बंदीखाने ॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं । छिनमें ते सम्पति लहै, चिंता भय विनसाहिं ॥४६॥ महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल । फणपति रण परचंड नीरनिधि रोग महाबल ॥ बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै । तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशै ॥

इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय। यातैं तुम पद-भक्तको, भक्ति सहाई होय ॥ ४७ ॥ यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी। विविध वर्णमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति विथारी ॥ जे नर पहिरैं कंठ भावना मनमैं भावैं। मानतुंग ते निजाधीन शिवलछमी पावैं ॥ भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हितहेत। जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिव-खेत ॥ ४८ ॥

—०—०—

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीकृत ।

२ । कल्याणमंदिरस्तोत्र भाषा ।

दोहा ।

परमज्योति परमातमा, परमज्ञान परवीन ॥
वंदू परमानंदमय, घटघटअंतरलीन ॥ १ ॥

चौपाई [१५ मात्रा]

निर्भय करन परम परधान । भवसमुद्रजलतारनयान ॥
शिव मंदिर अघहरन अनिंद । वंदहु पासचरन अरविंद ॥१॥

कमठमानभंजन वर वीर। गरिमासागर गुनगंभीर॥ सुर-
गुरु पार लहैं नहिं जास। मैं अजान जंपू जस तास॥ २॥
प्रभुस्वरूप अतिअगम अथाह। क्यों हमसेती होय निवाह॥
ज्यों दिनअंध उलूको पोत। कहि न सकै रवि-किरन-उदोत
॥ ३॥ मोहहीन जानै मनमाहिं। तोहु न तुम गुन वरनें
जाहिं॥ प्रलयपयोधि करै जल वौन। प्रगटहिं रतन गिनै
तिहिं कौन॥ ४॥ तुम असंख्य निर्मल गुनखान। मैं मति
हीन कहूं निजवान॥ ज्यों बालक निज बांह पसार। सागर

परिमिति कहै विचार ॥ ५ ॥ जे जोगींद्र करहिं तपखेद। तऊ न जानहिं तुम गुनभेद ॥ भक्तिभाव मुझ मन अभिलाख। ज्यों पंछी बोलैं निज भाख ॥ ६ ॥ तुमजसमहिमा अगम अपार। नाम एक त्रिभुवन-आधार ॥ आवै पवन पदमसर होय। ग्रीषमतपत निवारै सोय ॥ ७ ॥ तुम आवत भविजन घटमाहिं। कर्मनिबंध शिथिल ह्वै जाँहिं ॥ ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर। डरहिं भुजंग लगे चहुँओर ॥ ८ ॥ तुम निरखत जन दीनदयाल। संकटतैं छूटैं ततकाल ॥ ज्यों पशु घेर

लेहिं निशि चोर। ते तज भागहिं देखत भोर ॥ ९ ॥ तू भविजन तारक किमि होहि। ते चितधार तिरहिं ले तोहि ॥ यह ऐसें कर जान स्वभाव। तिरहिं मसक ज्यों गर्भितबाव ॥ १० ॥ जिहँ सब देव किये वश वाम। तें छिनमें जीत्यो सो काम॥ ज्यों जल करै अगनिकुल हान। बडवानल पीवै सो पान ॥११॥ तुम अनंत गरवा गुन लिये। क्योंकर भक्ति धरों निज हियै है॥ लघुरूप तिरहिं संसार। यह प्रभु महिमा अकथ अपार ॥ १२ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत। कर्मसुभट जीते

किहिं भांत ॥ यह पटतर देखहु संसार । नील विरछ ज्यों दहै तुसार ॥ १३ ॥ मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्ध-रूपसम ध्यावहिं तोहि ॥ कमलकरणिका विन नहिं और । कमलबीज उपज़नकी ठौर ॥ १४ ॥ जब तुव ध्यान धरै मुनि कोय । तव विदेह परमातम होय ॥ जैसें धातु शिलातनु त्याग । कनक स्वरूप धवैं जव आग ॥ १५ ॥ जाके मन तुम करहु निवास । विनशि जाय क्यों विग्रह तास ॥ ज्यों महंत विच आवै कोय । विग्रहमूल निवारै सोय ॥ १६॥ कर-

हिं विबुध जे आतमध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥
जैसें नीर सुधा अनुमान । पीवत बिषविकारकी हान ॥ १७ ॥
तुम भगवंत विमलगुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥
ज्यों नीलिया रोग दृग गहै ॥ वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥

दोहा—निकटरहत उपदेश सुन, तरुवर भयो अशोक ।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥१९॥ सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेट बीठ मुख सोहि ॥ त्यों तुम सेवत सुमनजन, बंध अधो मुख होहि ॥ २० ॥ उपजी तुम

हिय उदधितैं, वानी सुधा समान ॥ जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपदथान ॥ २१ ॥ कहहिं सार तिहुँ लोक-की; ये सुरचामर दोय ॥ भाव सहित जो जिन नमैं, तिहँ गति ऊरध होय ॥ २२ ॥ सिंघासन गिरिमेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर । श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन मोर ॥ २३ ॥ छविहत होत अशोकदल, तुम भामंडल देख। बीतरागके निकट रह, रहत न राग विसेष ॥ २४ ॥ सीख कहै तिहुँ लोककों, ये सुरदुंदुभिनाद । शिवपथसारथिवाह

जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २५ ॥ तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छवि देत । त्रिविधरूप धर मनहु शशि, सेवत नखत समेत ॥ २६ ॥

पद्धरिछंद—प्रभु तुम शरीरदुति रतन जेम । परतापपुंज जिम शुद्ध हेम ॥ अतिधवल सुजस रूपा समान । तिनके गढ तीन विराजमान ॥ २७ ॥ सेवहिं सुरेंद्र कर नमत भाल । तिन सीस मुकुट तज देहि माल ॥ तुमचरणलगत लहलहै प्रीति । नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥ २८ ॥ प्रभु

भोगविमुख तन करमदाह । जन पार करत भवजल निवाह ॥ ज्यों माटीकलश सुपक्क होय । ले भार अधोमुख तिरहिं तोय ॥ २९ ॥ तुम महाराज निरधन्न निराश । तज विभव विभव सबजगविकाश ॥ अक्षरस्वभावसुलिखै न कोय । महिमा भगवंतअनंत सोय ॥ ३० ॥ कर कोप कमठ निज वैर देख । तिन करी धूलिवरषा विशेष ॥ प्रभु तुम छाया नाहिं भई हीन । सो भयो पापि लंपट मलीन ॥ ३२ ॥ गरजंत घोर घन अंधकार । चमकंत बिज्जु जल मुसलधार ॥ वर-

षंत कमठ धरध्यान रुद्र। दुस्तर करंत निजभव समुद्र॥ ३१॥

वस्तुछन्द।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि। भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण। अग्निजाल झलकंत मुख, धुनि करंत जिमि मत्तवारण॥ कालरूप विकराल तन, मुंडमाल तिह कंठ। ह्वै निशंक वह रंकनिज, करै कर्मदृढकंठ॥

चौपाई—जे तुम चरणकमल तिहुंकाल। सेवहिं तज मायाजंजाल॥ भावभगतिमन हरष अपार। धन्य धन्य

जग तिन अवतार ॥ ३५ ॥ भवसागरमहं फिरत अजान । मैं तुअ सुजस सुन्यो नहिं कान ॥ जो प्रभुनाममंत्र मन धरै । तासों विपति भुजंगम डरै ॥ ३६ ॥ मनवांछित फल जिनपदमाहिं । मैं पूरवभव पूजे नाहिं ॥ मायामगन फिर्यो अज्ञान । करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥ ३७ ॥ मोहतिमिर छायो दृग मोहि । जन्मांतर देख्यो नहिं तोहि ॥ तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं । मरमछेदके कुवचन कहैं ॥ ३८ ॥ सुन्यो कान जस पूजे पाय । नैनन देख्यो रूप अघाय ॥ भक्तिहेतु

न भयो चित चाव । दुखदायक किरियाविन भाव ॥ ३९ ॥ महाराज शरणागत पाल । पतितउधारण दीनदयाल ॥ सुमिरण करहुं नाय निज शीश । मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥ कर्मनिंकदनमहिमा सार । अशरणशरण सुजश विसतार ॥ नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय । तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥ ४१ ॥ सुरगनवंदित दयानिधान । जगतारण जगपति जगजान ॥ दुखसागरतें मोहि निकासि । निर्भयथान देहु सुखरासि ॥ ४२ ॥ मैं तुम चरणकमलगुन गाय । बहु-

विधि भक्ति करी मनलाय ॥ जनमजनम प्रभु पाऊं तोहि।
यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ ४३ ॥

दोधकांत वेसरीछंद–षट्पद ।

इहिविधि श्रीभगवंत, सुजश जे भविजन भाषहिं । ते
निज पुण्यभँडार, संचि चिरपाप प्रणासहिं ॥ रोमरोम हुल-
संति, अंग प्रभु गुणमनध्यावहिं । स्वर्गसंपदा भुंज वेग पंचम-
गति पावहिं ॥ यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्रकी बुद्धि ।
भाषा कहत 'बनारसी' कारण समकितशुद्ध ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषा समाप्त ।

३। एकीभावस्तोत्रभाषा।

दोहा।

वादिराज मुनिराजके, चरण कमल चितलाय।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपर सुखदाय॥ १॥

रोला छन्द अथवा अहो जगत गुरुदेव सुनियो अर्ज हमारी बीनतीकी चाल।

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी। सो मुझ कर्मप्रबंध करत भव भव दुख भारी॥ ताहि तिहारी भक्ति जगत रवि ज्यों निरवारै। तो अब और कलेश कौन सो

नाहिं विदारै ॥ १ ॥ तुम जिन जोतिस्वरूप दुरितअँधियारि-
निवारी । सो गणेश गुरु कहैं तत्त्वविद्याधनधारी ॥ मेरे चित-
घरमाहिं बसौ तेजोमय यावत । पापतिमर अवकाश तहां सो
क्योंकर पावत ॥२॥ आनंदआंसूवदन धोय तुमसों चित सानै ।
गदगदसुरसों सुयशमंत्र पढि पूजा ठानै ॥ ताके बहुविधि व्याधि
व्याल चिरकालनिकासी । भाजैं थानक छोड़ देहबांबइके
वासी ॥३॥ दिवितैं आवनहार भये भविभागउदयबल । पहलेही
सुर जाय कनकमय कीय महीतल ॥ मनगृहध्यानदुवार आय

निवसो जगनामी। जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी॥ ४॥ प्रभु सब जगके विनाहेतुबंधव उपकारी। निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी॥ भक्ति रचित मम चित्तसेज नित वास करोगे। मेरे दुखसंताप देख किम धीर धरोगे॥५॥ भववनमें चिरकाल भ्रम्यो कछु कहिय न जाई। तुम श्रुतिकथा पियूष वापिका भागन पाई॥ शशि तुषार घन सार हार शीतल नहिं जा सम। करत न्हौन तामाहिं क्यों न भवताप बुझै मम॥ ६॥ श्रीविहार परिवाह होत शुचिरूप

सकल जग। कमलकनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग ॥
मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै। अब सो कौन कल्यान
जो न दिन दिन ढिग आवै ॥ ७ ॥ भव तज सुखपद बसे
काममदसुभट सँहारे। जो तुमको निरखंत सदा प्रियदास
तिहारे ॥ तुम वचनामृतपान भक्तिअंजुलिसों पीवै। तिन्हैं
भयानक क्रूररोग रिपु कैसे छीवै ॥ ८ ॥ मानथंभ पाषान
आन पाषान पटंतर। ऐसे और अनेक रतन दीखैं जगअंतर ॥
देखत दृष्टिप्रमान मानमद तुरत मिटावै। जो तुम निकट

न होय शक्ति यह क्योंकर पावै ॥ ९ ॥ प्रभुतन पर्वतपरस पवन उरमें निवहै है। तासों ततछिन सकल रोगरज बाहिर ह्वै है। जाके ध्यानाहूत बसो उर अंबुजमाहीं। कौन जगत उपकार करन समरथ सो नाहीं ॥ १० ॥ जनम जनमके दुःख सहे सब ते तुम जानों। याद किये मुझ हिये लगे आयुधसे मानों ॥ तुम दयाल जगपाल स्वामि मैं शरन गही है। जो कछु करनो होय करो परमान वही है ॥ ११ ॥ मरनसमय तुम नाममंत्र जीवकतैं पायो। पापाचारी श्वान प्रान तज

अमर कहायो ॥ जो मणिमाला लेय जपै तुम नाम निरंतर। इंद्र संपदा लहै कौन संशय इस अंतर ॥१२॥ जो नर निर्मल ज्ञानमान शुचि चारित साधैं अनवधि सुखकी सार भक्ति। कूंची नहि लाधै ॥ सो शिववांछक पुरुष मोक्षपट केम उघारैं। मोह मुहर दिढ करी मोक्ष मंदिरके द्वारैं ॥ १३ ॥ शिवपुर केरो पंथ पापतमसों अति छायो। दुखसरूप बहु कूपखाड़ सों बिकट बतायो ॥ स्वामी सुखसों तहां कौन जन मारग लागैं। प्रभु प्रवचनमणिदीप जोनके आगैं आगैं ॥ १४ ॥

कर्मपटलभूमाहिं दबी आतम निधि भारी । देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहिं उघारी ॥ तुम सेवक ततकाल ताहि निहचै कर धारै । श्रुतिकुदालसों खोद बंद भू कठिन विदारै ॥ १५ ॥ स्यादवादगिरि उपज मोक्षसागरलों धाई । तुम चरणांबुज परस भक्तिगंगा सुखदाई ॥ मो चित निर्मल थयो न्होन रुचिपूरव तामैं । अब वह हो न मलीन कौन जिन संशय यामैं ॥ १६ ॥ तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो । मैं भगवान समान भाव यों बरतै मेरो ॥

यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै। तुवप्रसाद सकलंक जीव बांछित फल पावै ॥ १७ ॥ वचनजलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै। भंगतरंगिनि विकथवादमल मलिन उथापै ॥ मनसुमेरसों मथै ताहि जे सम्यकज्ञानी। परमामृतसों तृपत होहिं ते चिरलों प्रानी ॥ १८ ॥ जो कुदेव छविहीन वसन भूषन अभिलाखै। बैरीसों भय भीत होय सो आयुध राखै ॥ तुम सुंदर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई। भूषन वसन गदादि ग्रहन काहेको होई ॥ १९ ॥ सुरपति सेवा करै कहा

प्रभु प्रभुता तेरी। सो सलाघना लहै मिटै जगसों जगफेरी।
तुम भवजलधिजिहाज तोहि शिवकंत उचरिये। तुही जगत
जनपाल नाथथुतिकी थुति करिये ॥ २० ॥ वचनजाल जड-
रूप आप चिन्मूरति झांईं। तातैं थुति आलाप नाहिं पहुंचै
तुमतांईं ॥ तो भी निर्फल नाहिं भक्तिरसभीने वायक। संत-
नको सुरतरुसमान वांछित वरदायक ॥ २१ ॥ कोप कभी
करो प्रीत कबहूं नहिं धारो। अति उदास बेचाह चित्त जिन-
राज तिहारो ॥ तदपि आन जग बहै बैर तुम निकट न

लहिये। यह प्रभुता जगतिलक कहां तुम बिन सरदहिये ॥२२॥
सुरतिय गावैं सुयश सर्वंगति ज्ञानस्वरूपी। जो तुमको थिर
होहिं नमैं भवि आनंदरूपी ॥ ताहि छेम पुर चलन बाट
बाकी नाहिं हो है। श्रुतके सुमरनमाहिं सो न कबहूं नर
नर मोहै ॥ २४ ॥ अतुल चतुष्टयरूप तुमैं जो चितमें धारै।
आदरसों तिहुंकालमाहिं जग थुति विस्तारै ॥ सो सुकृत-
शिवपंथ भक्ति रचनाकर पूरै। पंचकल्यानक ऋद्धिपाय निह-
चै दुख चूरै ॥ २४ ॥ अहो! जगपति पूज्य अवधि ज्ञानी

मुनि हारे । तुम गुनकीर्तनमाहिं कौन हम मंद बिचारे ॥ श्रुतिछलसों तुमविषैं देव आदर विस्तारे । शिवसुखपूरनहार कल्पतरु यही हमारे ॥ २५ ॥ वादिराज मुनिराज शब्दविद्याके स्वामी । वादिराज मुनिराज तर्कविद्यापति नामी ॥ वादिराज मुनिराज काव्यकरता अधिकारी । वादिराज मुनिराज बड़े भविजन उपकारी ॥ २६ ॥

१ । मूलके शेष श्लोकका कवि पांडे हीरानंदजीने ऐसा दोहा बनाया है

वादिराज मुनिराज अनु, शाब्दिक तार्किक लोक ।
काव्यकार सहकार जगि, जीवन 'हीर' सु श्लोक ॥ २६ ॥

दोहा।

मूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषासूत्रमझार।
भक्तिमाल 'भूधर' रची करो कंठ सुखकार ॥ १ ॥

इति एकीभावस्तोत्रभाषा।

स्वर्गीय कविवर शांतिदासकृत

४। विषापहारभाषा।

दोहा।

नमों नाभिनंदन बली, तत्त्वप्रकाशनहार।
तुर्यकालकी आदिमें, भये प्रथम अवतार ॥ १ ॥

काव्य या रोला छंद ।

निज आतममैं लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे । जानत सब व्यापार संग नहिं कछू तिहारे ॥ बहुत कालके हो फुनि जरा न देह तिहारी । ऐसे पुरुष पुरान करहु रछ्या जु हमारी ॥ १ ॥ परकरिकैं जु अचिंत्य भार जुगको अति भारो । सो एकाकी भयो वृषभ कीनो निसतारो ॥ करि न सकैं जोगिंद्र तवन मैं करिहों ताको । भानु प्रकाश न करै दीपतम हरै गुफाको ॥ २ ॥ स्तवनकरनको गर्भ तज्यो सक्री बहु ज्ञानी ।

मैं नहिं तजौं कदापि स्वल्पज्ञानी शुभध्यानी॥ अधिक अर्थकौं कहूं यथाविधि बैठि झरोकै। जालांतरधरि अक्ष भूमिधरकौं जु विलोकै॥ ३॥ सकल जगतकौं देखत अर सबके तुम ज्ञायक। तुमकौं देखत नाहिं नाहिं जानत सुखदायक॥ हौ किसाक तुम नाथ और कितनाक बखानै। तातैं थुति नहिं बनै असक्ती भये सयानै॥ ४॥ बालकवत निजदोषथकी इहलोक दुखी अति॥ रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति॥ हित अनहितकी समझिमांहि हैं मंदमती हम।

सब प्राणिनके हेत नाथ तुम बालवैद सम ॥५॥ दाता हरता नाहिं भानु सबकौं बहकावत । आज कालके छलकरि नित-प्रति दिवस गुमावत ॥ हे अच्युत जो भक्त नमैं तुम चरन-कमलकौं । छिनक एकमैं आप देत मनवांछित फलकौं ॥६॥ तुमसौं सन्मुख रहै भक्तिसौं सो सुख पावै । जो सुभावतैं विमुख आपतैं दुखहि बढावै ॥ सदा नाथ अवदात एकद्युति रूप गुसांईं । इन दोन्योंके हेत स्वच्छ दरपणवत झाँईं ॥७॥ है अगाध जलनिधी समदजल है जितनौ ही । मेरू तुंग-

सुभाव सिखरलौं उच्च भन्यो ही ॥ वसुधा अर सुरलोक एहु इसभांति सई है। तेरी प्रभुता देव भुवनिकूं लंघि गई है॥८॥ है अनवस्था धर्म परम सो तत्त्व तुमारे। कह्यो न आवागमन प्रभू मतमांहि तिहारे ॥ दृष्ट पदारथ छांडि आप इच्छति अदृष्टकौं। विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्टकौं॥ ९ ॥ कामदेवको किया भस्म जगत्राता थे ही। लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही ॥ सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हार्‌यो। तुमकौं काम न ग्रहै आप घट सदा उजार्‌यो

॥१०॥ पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावै । तिनके औगुन कहैं नाहि तू गुणी कहावै ॥ निज सुभावतैं अंबुराशि निज महिमा पावै । स्तोक सरोवर कहे कहा उपमा बढि जावै ॥ ११ ॥ कर्मनकी थिति जंतु अनेक करै दुखकारी । सो थिति बहु परकार करै जीवनकी ख्वारी ॥ भवसमुद्रके मांहि देव दोन्योंके साखी । नाविक नाव समान आप वाणीमें भाखी ॥ १२ ॥ सुखकौं तो दुख कहै गुणनकूं दोष विचारै । धर्म करनके हेत पाप हिरदै विच धारै ॥ तेल निकासन काज

धूलिकौं पेलै घानी । तेरे मतसौं वाह्य इसे जे जीव अज्ञानी ॥ १३ ॥ विष मोचै ततकाल रोगकौं हरै ततच्छन । मणि औषधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन ॥ ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यौं मन धरि हैं । भ्रमत अंपरजन वृथा नहीं तुम सुमिरन करिहैं ॥ १४ ॥ किंचित भी चितमाहिं आप कछु करो न स्वामी । जे राखैं चितमाहिं आपको शुभपरिणामी ॥ हस्तामलवत लखैं जगतकी परिणति जेती । तेरे चितके वाह्य तोउ जीवै सुखसेती ॥ १५ ॥ तीनलोक तिरकालमाहिं

तुम जानत सारी। स्वामी इनकी संख्या थी तितनीहि निहारी॥ जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा। तेऽपि झलकते आनि ज्ञानका ओर न तेरा॥ १६॥ है अगम्य तवरूप करै सुरपति प्रभु सेवा। ना कछु तुम उपकार हेत देवनके देवा॥ भक्ति तिहारी नाथ इंद्रके तोषित मनको। ज्यौं रवि सन्मुख छत्र करै छाया निज तनको॥ १७॥ वीतरागता कहां कहां उपदेश सुखाकर। सो इच्छाप्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर॥ प्रतिकूली भी वचन जगतकूं प्यारे अतिही।

हम कछु जानी नाहिं तिहारो सत्यासतिही ॥ १८ ॥ उच्च-
प्रकृति तुम नाथ संग किंचित न धरनतैं । जो प्रापति तुम
थकी नाहि सो धनेसुरनतैं ॥ उच्चप्रकृति जलविना भूमिधर
धुनी प्रकासै । जलधि नीरतैं भर्‌यो नदी ना एक निकासै
॥ १९ ॥ तीन लोकके जीव करो जिनवरकी सेवा । नियम-
थकी करदंड धर्‌यो देवनके देवा ॥ प्रातिहार्य तौ बनै इंद्रके
बनैं न तेरे । अथवा तेरे बनैं तिहारे निमित परेरे ॥ २० ॥
तेरे सेवक नाहि इसे जे पुरुष हीनधन । धनवानोंकी ओर

लखत वे नाहिं लखत पन ॥ जैसैं तमथिति किये लखत पर-
कास थितीकूं । याकूं सूझत नाहिं तमथिती मंदमतीकूं ॥२१॥
निजबुध सासोसास प्रगट लोचन टमकारा । तिनकौं वेदत
नाहिं लोकजन मूढ विचारा ॥ सकल ज्ञेय ज्ञायक अमूरति ज्ञान
सुलच्छन । सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन
॥ २२ ॥ नाभिरायके पुत्र पिता प्रभु भरततने हैं । कुल
प्रकाशिकैं नाथ तिहारो तवन भने हैं ॥ ते लघुधी असमान
गुननकौं नाहिं भजे हैं । सुवरन आयो हाथि जानि पाषान

तजै हैं ॥२३॥ सुरासुरनको जीति मोहने ढोल वजाया। तीन लोकमें किये सकल वशि यों गरभाया॥ तुम अनंत बलवंत नाहिं ढिग आवन पाया। करि विरोध तुमथकी मूलतैं नाश कराया॥ २४॥ एक मुक्तिका मार्ग देव तुमने परकास्या। गहन चतुरगति मार्ग अन्य देवनकूं भास्या॥ 'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिके। भुज न विलोको नाथ कदाचित गर्भ जु धरिके॥२५॥ केतुविपक्षी अर्कतनो फुनि अग्नितनो जल। अंबुनिधीअरि प्रलयकालको पवन महाबल॥ जगतमाहिं जे

भोग वियोग विपक्षी हैं निति। तेरो उदयो है विपक्षतैं रहित जगतपति ॥ २६ ॥ जाने विन हू नवत आपको जो फल पावै। नमत अन्यको देव जानि सो हाथ न आवै ॥ हरी मणीकूं काच, काचकूं मणी रटत है ॥ ताकी बुधिमें भूल, मूल्य मणिको न घटत है ॥२७॥ जे विवहारी जीव वचनमैं कुशल सयानैं। ते कषायकरि दग्ध नरनकौं देव बखानैं ॥ ज्यों दीपक बुझि जाय ताय कहि 'नंदि' भयो है। भग्न घडेको कहैं कलस ए मँगलि गयो है ॥ २८ ॥ स्यादवाद संजुक्त

अर्थको प्रगट बखानत । हितकारी तुम वचन श्रवनकरि को नहि जानत ॥ दोषरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जगगुर । जो ज्वरसेती मुक्त भयो सो कहत सरलसुर ॥ २९ ॥ विन-वांछा ए वचन आपके खिरैं कदाचित । है नियोग ए कोपि जगतको करत सहजहित ॥ करै न वांछा इसी चंद्रमा पूरो जलनिधि । सीतरश्मिकूं पाय उदधि जल बढै स्वयंसिधि ।३०। तेरे गुणगंभीर परम पावन जगमाईं । बहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाई ॥ तिन गुणानको अंत एक याही विधि

दीसै। ते गुण तुझ ही माहिं औरमैं नाहिं जगीसै ॥ ३१ ॥ केवल श्रुति ही नाहि भक्तिपूर्वक हम ध्यावत। सुमरन प्रणमन तथा भजनकरि तुमगुण गावत॥ चितवन पूजन ध्यान नमन-करि नित आराधैं। को उपावकरि देव सिद्ध फलको हम साधैं॥ ३२ ॥ त्रैलोकी नगराधि देव नित ज्ञानप्रकाशी। परमज्योति परमातमशक्ति अनंती भासी॥ पुन्यपापतैं रहित पुन्यके कारण स्वामी। नमों नमों जगवंद्य अवंद्यक नाथ अकामी ॥३३॥ रस सपरस अर गंध रूप नहिं शब्द तिहारे।

इनिके विषय विचित्र भेद सब जाननहारे ॥ सब जीवनप्रति-
पाल अन्यकरि हैं अगम्य गन। सुमरनगोचर नाहिं करौं
जिन तेरो सुमिरन ॥ ३४ ॥ तुम अगाध जिनदेव चित्तके
गोचर नाहीं। निःकिंचन भी प्रभू घनेश्वर जाचत साईं ॥
भये विश्वके पार दृष्टिसों पार न पावै। जिनपति एम निहारि
संतजन सरनै आवै ॥ ३५ ॥ नमों नमों जिनदेव जगतगुरु
शिक्षादायक। निजगुणसेती भई उन्नती महिमालायक ॥
पाहनखंड पहार पछैं ज्यों होत और गिर। त्यों कुलपर्वत

नाहिं सनातन दीर्घ भूमिधर ॥ ३६ ॥ स्वयं प्रकाशी देव रैन दिनकूं नाहिं बाधित । दिवस रात्रि भी छतैं आपकी प्रभा प्रकासित ॥ लाघव गौरव नाहिं एकसो रूप तिहारो । कालकलातैं रहित प्रभूसूं नमन हमारो ॥ ३७ ॥ इहविधि बहु परकार देव तव भक्ति करी हम । जाचूं वर न कदाचि दीन है रागरहित तुम ॥ छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे ह्वै है । फिर छायाकौ जाचत यामैं प्रापति कै है ॥३८॥ जो कुछ इच्छा होय देनकी तौ उपगारी । द्यो बुधि ऐसी करूं प्रीतिसौं भक्ति

तिहारी ॥ करो कृपा जिनदेव हमारे परि है तोषित । सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नहिं पोषित ॥ यथाकथंचित भक्ति रचै विनईजन के ही । तिनकूं श्रीजिनदेव मनोवांछित फल दे ही ॥ फुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावैं । सो सुख जस धन-जय, प्रापति है शिवपद पावैं ।४०। श्रावक माणिकचंद सुबुद्धी अर्थ बताया । सो कवि 'शांतीदास' सुगमकरि छंद बनाया ॥ फिरिफिरिकै ऋषि 'रूपचंद' ने करी प्रेरणा । भाषा स्तोतर विषापहारकी पढो भविजना ॥ ४१ ॥

इति श्रीविषापहार स्तोत्र समाप्त ।

कविवर भूधरदासजीकृत ।

५ । भूपालचतुर्विंशति भाषा ।

दोहा ।

सकल सुरासुर पूज नित, सकल सिद्धिदातार ।
जिनपद बंदूं जोरकर, अशरन जन आधार ॥ ॥ १ ॥

चौपाईछन्द १५ मात्रा ।

श्रीसुखवासमहीकुलधाम । कीरतिहर्षणथलअभिराम ॥
सरसुतिके रतिमहल महान । जय जुवतीको खेलन थान ॥

अरुण वरण बंछित बरदाय । जगतपूज्य ऐसे जिन पाय ॥
दर्शन प्राप्त करै जो कोय । सब शिवथानक सो जन होय ॥१॥
निर्विकार तुम सोमशरीर । श्रवणसुखद बाणी गंभीर ॥
तुम आचरण जगतमैं सार । सब जीवनको है हितकार ॥
महानिंद भवमारू देश । तहां तुंग तरु तुम परमेश ॥
सघनछांहिंमंडितछविदेत । तुम पंडित सेवैं सुख हेत ॥ २ ॥
गर्भकूपतैं निकस्यो आज । अब लोचन उघरे जिनराज ॥
मेरो जन्मसफल भयो अबै । शिवकारण तुम देखे जबै ॥

जगजननैनकमलबनखंड । विकसावनशशिशोकविहंड ॥
आनँदकरनप्रभातुमतणी । सोई अमी झरन चांदणी ॥ ३ ॥
सब सुरेंद्र शेखर शुभ रैन । तुम आसन तट माणक ऐन ॥
दोऊं दुति मिल झलकैं जोर । मानों दीपमाल दुहुं ओर ॥
यह संपति अरु यह अन चाह । कहां सर्वज्ञानी शिवनाह ॥
तातैं प्रभुता है जगमांहिं । सही असम है संशय नांहिं ॥४॥
सुरपतिआन अखंडित वहै । तृण ज्यों राजतजो तुम वहै ॥
जिन छिनमें जगमहिमा दली । जीत्यो मोह शत्रु बहुबली ।

लोकालोक अनंत अशेष । कीनो अंत ज्ञानसों देष ।
प्रभु प्रभाव यह अद्भुत सवै । अवर देवमैं भूल न फवै ॥५॥
पात्रदान तिन दिन दिन दियो । तिन चिरकाल महातप कियो ॥
बहु बिधि पूजाकारक वही । सर्व शील उन पाले सही ॥
और अनेक अमलगुणरास । प्रापति आय भये सब तास ॥
जिन तुमशरधासों कर टेक । दृगवल्लभ देखे छिन एक॥६॥
त्रिजगतिलक तुम गुणगण जेह । भवभुजंगविषहरमणि तेह ॥
जो उरकाननमाहिं सदीव । भूषण कर पहरै भविजीव ॥

सोई महामती संसार । सो श्रुत सागर पहुंचै पार ॥
सकल लोकमें शोभा लहै । महिमा जोग जगतमैं वहै ॥७॥

दोहा छंद ।

सुरसमूह ढोलै चमर, चंदकिरणद्युति जेम ।
नवतनबधूकटाक्षतैं, चपल चलैं अतिएम ॥
छिन छिन ढलकैं स्वामिपर, सोहत ऐसो भाव
किधों कहत सिधि लच्छिसों, जिनपतिके ढिग आव ॥ ८ ॥

चौपाई छंद १५ मात्रा ।

शीशछत्र सिंहासन तलैं । दिपै देहद्युति चामर ढलै ॥

बाजैं दुंदुभि बरसैं फूल । ढिगअशोक बाणी सुखमूल ॥
इहिविधि अनुपम शोभा मान । सुरनरसभा पदमनीभान ॥
लोकनाथ वंदैं शिरनाय । सो हम शरण होहु जिनराय ॥ ९ ॥
सुरगजदंतकमलवनमाहिं । सुरनारीगण नाचत जाहिं ॥
बहुविधि बाजे बाजैं थोक । सुन उछाह उपजै तिहुलोक ॥
हर्षंत हरि जै जै उच्चरैं । सुमनमाल अपछर कर धरैं ॥
यों जन्मादि समय तुम होय । जयो देव देवागम सोय ॥१०॥
तोषबढावन तुम मुखचंद । जननयनामृतकरन अमंद ॥

सुंदर द्युतिकर अधिक उजास। तीनभवन नहिं उपमा तास॥
ताहि निरखि सनयन हम भये। लोचन आज सुफल करलये॥
देखनयोग जगतमें देख। उमग्यो उर आनंद विशेख॥११॥
कैयक यों मानैं मतिमंद। विजितकाम विधि ईश मुकंद॥
ये तो हैं वनितावश दीन। कामकटकजीतनबलहीन॥
प्रभु आगैं सुरकामिनि करैं। ते कटाक्ष सब खाली परैं॥
यातैं मदन विध्वंशन वीर। तुम भगवंत और नहिं धीर॥१२॥
दर्शनप्रीति हिये जब जगी। तबै आम्रकोंपल बहु लगी॥

तुम समीप उठ आवन ठयो। तबसों सघन प्रफुल्लित भयो ॥
अबहूं निज नैननढिंग आय। मुखमयंक देख्यो जगराय ॥
मेरो पुन्नबिरख इस बार। सुफलफल्यो सब सुखदातार ॥१३॥

दोहा छंद।

त्रिभुवन वनमें विस्तरी, कामदवानल जोर।
वाणीवरषाभरणसों, शांति करहु चहुँ ओर ॥
इंद्र मोर नाचै निकट, भक्तिभाव धर मोह।
मेघ सघन चौबीस जिन, जैवंते जग होय ॥ १४ ॥

चौपाई छंद १५ मात्रा।

भविजनकुमुदचंद सुखदैन । सुरनरनाथप्रमुखजगजैन ॥
ते तुम देख रमैं इह भांति । पहुपगेह लह ज्यों अलिपांत ॥
शिरधर अंजुलि भक्तिसमेत । श्रीगृहपति परिदक्षण देत ॥
शिवसुखकीसी प्रापति भई । चरणछांहसों भवतपगई ॥१५॥
वह तुमपदनखदर्पण देव । परम पूज्य सुंदर स्वयमेव ॥
तामैं जो भविभागविशाल । आननअविलोकै चिरकाल ॥
कमलाकीरति कांति अनूप । धीरजप्रमुख सकल सुखरूप ॥

वे जगमंगल कौन महान । जो न लहै वह पुरुष प्रधान ।१६।
इंद्रादिक श्रीगंगा जेह । उत्पतिथान हिमाचल येह ॥
जिनमुद्रामंडित अतिलशै । हर्ष होय देखे दुख नशै ॥
शिखर ध्वजागण सोहैं एम । धर्मसुतरुवर पल्लव जेम ॥
यों अनेक उपमाआधार । जयो जिनेश जिनालयसार ॥१७॥
शीश नवाय नमंत सुरनार । केशकांतिमिश्रित मनहार ॥
नखउद्योत बरतै जिनराज । दशदिशपूरित किरणसमाज ॥
स्वर्गनागनरनायक संग । पूजत पायपद्म अतुलंग ॥

दुष्टकर्मदलदलन सुजान । जैवंते बरतो भगवान ॥ १८ ॥
सोकर जागै जो धीमान । पंडित सुधी सुमुख गुणवान ॥
आपन मंगलहेतु प्रशस्त । अवलोकन चाहै कछु वस्त ॥
और वस्तु देखै किस काज । जो तुम मुखराजै जिनराज ॥
तीनलोकको मंगलथान । प्रेक्षणीय तिहुँ जगकल्यान ॥१९॥
धर्मोदय तापसगृहकीर । काव्यबंधवनपिक तुम वीर ॥
मोक्षमल्लिका मधुपरसाल । पुन्यकथा कजसरसि मराल ॥
तुम जिनदेव सुगुणमणिमाल । सर्वहितंकर दीनदयाल ॥

ताको कौन न उन्नतकाय। धरै किरीटमाहिं हर्षाय ॥ २० ॥
केई बांछैं शिवपुर बास। केई करैं स्वर्गसुख आस ॥
पचै पँचानल आदिक ठान। दुःख बंधे जस बँधे अयान ॥
हम श्रीमुखबानी अनुभवैं। सरधा पूरब हिरदै ठवैं ॥
तिस प्रभाव आनंदित रहैं। स्वर्गादिक सुख सहजे लहैं ॥२१॥
न्होनमहोच्छव इंद्रन कियो। सुरतिय मिल मंगल पढ़लियो ॥
सुयशशरदचंद्रोपम सेत। सो गंधर्व गान करलेत ॥
और भक्ति जो जो जिसजोग। शेष सुरन कीनी सुनियोग ॥

अब प्रभु करैं कौनसी सेव । हम चित भयो हिंडोलो एव ।२२
जिनवर जन्मकल्यानक घोस । इंद्र आप नाचै कर हौंस ॥
पुलकितअंग पिताघर आय । नाचतबिधिमैं महिमा पाय ॥
अमरी बीन बजावै सार । धरी कुचाग्र करत झंकार ॥
इहि विधि कौतुक देख्यो जबै । औसर कौन कह सकै अबै ।२३।
श्रीप्रतिबिंब मनोहर एम । विकसतबदन कमलदल जेम ॥
ताहि हेर हरखे दृग दोय । कह न सकूं इतनो सुख होय ॥
तब सुरसंग कल्यानक काल । प्रघटरूप जोवै जगपाल ॥

इकटक दिष्ट एक चिंतलाय । वह आनंद कहां क्यों जाय ।२४।
देख्यो देव रसायन धाम । देख्यो नवनिधिको बिसराम ॥
चिंता रयन सिद्धिरस अबै । जिनगृह देखत देखे सबै ॥
अथवा इन देखे कछु नाहिं । यह अनुगामी फल जगमाहिं ॥
स्वामी सर्‍यो अपूरव काज । मुक्तिसमीप भई मुझ आज ।२५।
अब बिनवै भूपाल नरेश । देखे जिनवर हरन कलेश ॥
नेत्रकमल विकसे जगचंद्र । चतुर चकोर करन आनंद ॥
श्रुतिजलसों यों पावन भयो । पापताप मेरो मिट गयो ॥

मो चित है तुम चरणनमाहिं। फिर दर्शन हूज्यो अब जाहिं ॥

छप्पय छंद।

इहिविधि बुद्धिविशालराय भूपाल महाकवि।
कियो ललित थुतिपाठ हिये सब समझ सकै नवि ॥
टीकाके अनुसार अर्थ कछु मनमें आयो।
कहीं शब्द कहिं भाव जोड़ भाषा यश गायो ॥
आतम पवित्रकारण किमपि, बाल ख्याल सो जानियो।
लीज्यो सुधार भूधरतणी, यह विनती बुध मानियो ॥२७॥

॥ इति ॥

६ । पार्श्वनाथस्तोत्र ।

भुजंगप्रयात छंद ।

नरेंद्रं फणींद्रं सुरेंद्रं अधीसं । शतेंद्रं सुपूजैं भजैं नाय शीसं ॥ मुनींद्रं गणेंद्रं नमौं जोडि हाथं । नमों देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥ १ ॥ गजेंद्रं मृगेंद्रं गह्यौ तू छुडावै । महा आगतैं नागतैं तू बचावै ॥ महावीरतैं युद्धमें तू जितावै । महारोगतैं बंधतैं तू छुडावै ॥ २ ॥ दुखीदुःखहर्ता सुखीसुक्खकर्ता । सदा सेवकोंको महानंदभर्ता ॥ हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं ।

विषं डांकिनी विघ्नके भय अवाचं । ३ । दरिद्रीनको द्रव्यके दान
दीने । अपुत्रीनकौ तू भले पुत्र कीने ॥ महासंकटोंसे निकारै
विधाता । सबै संपदा सर्वको देहि दाता ॥ ४ ॥ महाचोरको
वज्रको भय निवारै । महापौनके पुंजतैं तू उबारै ॥ महाक्रो-
धकी अग्निको मेघ—धारा । महालोभ—शैलेशको वज्र भारा ॥५॥
महामोह अंधेरको ज्ञानभानं । महाकर्मकांतारको दौं प्रधानं ॥
किये नाग नागिनं अधोलोकस्वामी । हर्चो मान तू दैत्यको हो
अकामी ॥ ६ ॥ तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं तुही दिव्यचिंता-

मणी नाग एनं ॥ पशू नर्कके दुःखतैं तू छुडावै । महास्वर्गमें मुक्तिमें तू बसावै ॥७॥ करै लोहको हेमपाषाण नामी । रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी ॥ करै सेव ताकी करैं देव सेवा । सुनै वैन सोही लहै ज्ञानमेवा ॥ ८ ॥ जपै जाप ताको नहीं पाप लागै । धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ॥ बिना तोहि जाने धरै भव घनेरे । तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे ॥ ९ ॥

दोहा—गणधर इंद्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान ।
'द्यानत' प्रीत निहारकै, कीजे आप समान ॥१०॥

७। पार्श्वनाथस्तोत्र भूधरकृत।

दोहा—कर जिन पूजा अष्टविधि, भावभक्ति जिन भाय।
अब सुरेश परमेश थुति, करौं शीश निज नाय ॥१॥

चौपाई।

प्रभु इस जग समर्थ ना कोय। जासों तुम यश वर्णन होय ॥
चार ज्ञानधारी मुनि थकैं। हमसे मंद कहा कर सकैं ॥ २ ॥
यह उर जानत निश्चय हीन। जिनमहिमावर्णन हम कीन ॥

पर तुम भक्ति थके वाचाल। तिसवस होय गहूं गुणमाल ॥३॥
जय तीर्थंकर त्रिभुवन धनी। जय चंद्रोपम चूडामनी ॥
जय जय परम धाम दातार। कर्मकुलाचल चूरनहार ॥ ४ ॥
जय शिवकामिनिकंत महंत। अतुल अनंत चतुष्टयवंत।
जय जय आशभरण बडभाग। तपलक्ष्मीके सुभग सुहाग ॥
जय जय धर्मध्वजाधर धीर। स्वर्गमोक्ष दाता वरवीर ॥
जय रत्नत्रयरत्नकरंड। जय जिन तारण तरण तरंड ॥६॥
जय जय समवशरणशृंगार। जय संशयबनदहन तुषार ॥

जय जय निर्विकार निर्दोष । जय अनंत गुणमाणिक कोष ॥
॥ ७ ॥ जय जय ब्रह्मचर्यदल साज । काम सुभट विजयी
भटराज ॥ जय जय मोहमहातरु-करी । जय जय मद
कुंजर-केहरी ॥ ८ ॥ क्रोधमहानल-मेह प्रचंड । मानमोहधर
दामिनिदंड ॥ माया बेल धनंजयदाह । लोभ सलिलशोषण
दिननाह ॥ ९ ॥ तुम गुणसागर अगम अपार । ज्ञानजहाज
न पहुंचै पार ॥ तट ही तटपर डोलै सोय । कारन सिद्धि तहां
ही होय ॥ १० ॥ तुमरी कीर्तिबेल बहु बढी । यत्न विना

जगमंडप चढी ॥ अवर कुदेव सुयस निज चहैं। प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥ ११ । जगति जीव घूमै विन ज्ञान। कीना मोहमहाविष पान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी। तिह मुनिजन मिल निश्चय करी ॥ १२ ॥ जन्मजरा मिथ्या मत मूल। जन्ममरण लागे तहँ फूल। सो कबहूं विन भक्ति कुठार। कटै नहीं दुखफलदातार ॥ १३ ॥ कल्पतरोवर चित्रा बेलि। कामपोरवा नवनिधि मेल ॥ चिंतामणि पारस पाषान। पुण्यपदारथ और महान ॥ १४ ॥ ये सब एकजन्म

संयोग। किंचित सुख दातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव। जन्म जन्म सुखदायक देव ॥ १५ ॥ तुम जगबांधव तुम जगतात। अशरणशरण विरद विख्यात ॥ तुम सब जीवनके रखवाल। तुम दाता तुम परम दयाल ॥१६॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान। तुम समदर्शी तुम सब जान ॥ जय मुनि यज्ञ पुरुष परमेश। तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥१७॥ तुम जगभर्त्ता तुम जग जान। स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम बिन तीन काल तिहुं लोय। नाहीं शरण जीवका होय ॥

॥ १८ ॥ यातैं अब करुणानिधि नाथ । तुम सन्मुख हम जोड़ैं हाथ ॥ जबलों निकट होय निर्वाण । जगनिवास छूटै दुख दान ॥१९॥ तबलों तुम चरणांबुज बास । हम उर होय यही अरदास ॥ और न कछु बांछा भगवान । है दयालु दीजे बरदान ॥ २० ॥

दोहा-इहविधि इंद्रादिक अमर, कर बहु भक्ति विधान ।
निज कोठे बैठे सकल, प्रभु सन्मुख सुख मान ॥२१॥
जीति कर्म रिपु जे भये, केवल लब्धि निवास ।

सो श्रीपार्श्वप्रभू सदा, करो विघ्नघन नाश ॥ २२ ॥

इति पार्श्वनाथस्तोत्र ।

८। अथ अहिछित पार्श्वनाथ स्तोत्र ।

जोगीरासेकी चालमें ।

वंदो श्रीपारसपदपंकज, पंच परम गुरु ध्याऊं। शारद माय नमो मनवचतन, गुरु गौतम शिर नाऊं॥ एक समय श्रीपारस जिनवर बन तिष्ठे वैरागी। बाह्याभ्यंतर परिग्रह त्यागे, आतमसों लव लागी॥ १॥ कल्पद्रुमसम प्रभुतन

सोहै, करपल्लव तनसाखा । अविचल आतम ध्यान पगे, प्रभु इकचित मन थिर राखा ॥ माता—तात कमठचर पापी । तपसी तप करि मूवो । अज्ञानी अज्ञान तपस्या-बल, करि सो सुर हूवो ॥ २ ॥ मारग जात विमान रह्यो थिर, कोप अधिक मन ठान्यो । देखत ध्यानारूढ जिनेश्वर, शत्रु आपनो मान्यो ॥ भीषणरूप भयानक दृग कर, अरुणवरन तन कांपै । मूसलधारासम जल छोडै, अधर दशनतल चांपै ॥ ३॥ अति अंधियार भयानक निशि अति, गर्जै घटा घन घोरै ।

चपला चपल चमकती चहुंदिशि धीरन धीरज छोरै ॥ शब्द भयंकर करत असुर गण, अग्निजाल मुख छोडै। पवन प्रचंड चलाय प्रलयवत, द्रुमगण तृणसम तोड़ै ॥ ४ ॥ पवन प्रचंड मूसलजलधारा, निशि अतिही अँधियारी । दामिनिदमक चिकार पिसाचन, बन कीनो भयकारी ॥ अविचल धीर गँभीर जिनेश्वर, थिर आसन बन ठाडे । पवन परीषहसों नहिं कांपे, सुरगिरिसम मन गाढे ॥ ५ ॥ प्रभुके पुण्यप्रताप-पवनवश, फणपतिआसन कंप्यो । अति भयभीत विलोकि चहूं

दिशि, चकित ह्वै मन जंप्यो ॥ जान्यो प्रभु उपसर्ग अवधि-
बल पद्मावतिजुत धायो । फणको छत्र कियो प्रभुके शिर,
सर्वारिष्ट नशायो ॥ ६ ॥ फणपतिकृत उपसर्गनिवारण, देखि
असुर दुठ भाग्यो । लोकालोक विलोकन प्रभुकै, तुरतहिं
केवल जाग्यो ॥ समवशरणकी रचना कारण, सुरपति आज्ञा
दीनी । मणिमुक्ताहीराकंचनमय, धनपति रचना कीनी ॥७॥
तीनो कोट रचे मणिमंडित, धूलीसाल बनाई । गोपुर तुंग
अनूप विराजें, मणिमय गहरी खाई ॥ सरवर सजल मनोहर

सोहै, वन उपवनकी सोभा। वापी विविध विचित्र विलोकत सुरनरखगमन लोभा ॥ ८ ॥ खेवैं देव गलिनमें घट भरि, धूपसुगंध सुहाई। मंद सुगंध प्रतापपवनवश, दशहूं दिशिमें छाई ॥ गरुडादिकके चिन्ह अलंकृत, धुज चहुं ओर विराजें। तोरन बंदनवारी सोहैं, नव निधिको छवि छाजें ॥ ९ ॥ देवी देव खडे दरवानी, देखि बहुत सुख पावैं। सम्यकवंत महा श्रद्धानी, भवि सो प्रीति बढावैं ॥ तीन कोटके मध्य जिनेश्वर, गंध कुटी सुखदाई। अंतरीक्षसिंहासनऊपर, राजें

त्रिभुवन राई ॥ १० ॥ मणिमय तीन सिंहासन सोभा, वरणत पार न पाऊं । प्रभुके चरणकमलतल सोभैं, मन मोदित शिर नाऊं ॥ चंद्रकांति सम दीप्ति मनोहर, तीन छत्र छवि आखी । तीनभुवन ईश्वरताके हैं, मानों वे सब साखी ॥ ११ ॥ दुंदभि शब्द गहिर अति बाजैं, उपमा वरणी न जाई । तीनभुवनजीवनप्रति भाखैं, जय घोषण सुखदाई ॥ कल्पतरूवरपुष्प सुगंधित, गंधोदककी वर्षा । देवी देव करैं निशवासर, भवि जीवनमन हर्षा ॥ १२ ॥ तरु अशोककी उपमा वरणत, भविजन पार न पावैं ।

संगवियोग दुखीजन दर्शत, तुरतही शोक नशावैं । कुंदपुहप-
सम श्वेत मनोहर, चौंसठि चमर दुराहीं । मानों निरमल सुर-
गिरिके तट, झरना झमकि झराहीं ॥१३॥ प्रभुतनश्रीभामंड-
लकी दुति, अद्भुत तेज विराजै। जाकी दीप्ति मनोहर आगें,
कोटि दिवाकर लाजें ॥ दिव्य वचन सबभाषागर्भित, खिरहिं
त्रिकाल सुबानी । 'आसा' आस करें सो पूरण, श्रीपारस
सुखदानी ॥ १४ ॥ सुर नर जिय तिरयंच घनेरे, जिनवंदन
चित आनै । वैरभावपरिहार निरंतर, प्रीति परस्पर ठानै ॥

दशहूं दिशि निरमल अति दीखै, भयो है सोभ घनेरा। स्वच्छसरोवरजलकर पूरे, वृक्ष फरे चहुं फेरा ॥ १५ ॥ साली आदिक खेती चहुं दिशि, भई स्वमेव घनेरी। जीवनवध नहिं होय कदाचित, यह अतिसय प्रभुकेरी ॥ नख अरु केश बढ़ै नहिं प्रभुके, नहिं नैन न टमकारे। दर्पणवत प्रभुको तन दीपै, आनन चार निहारे ॥ १६ ॥ इंद्र नरेंद्र. धनेंद्र सबै मिलि, धर्मामृत अभिलाषी। गणधर पदशिरनाय सुरासुर, प्रभुकी थुति अति भाषी ॥ दीनदयाल कृपाल दयानिधि, त्रषा-

वंत भवि चीन्हे। धर्मामृत वर्षाय जिनेश्वर, तोषित बहुविध कीन्हे ॥१७॥ आरजखंडविहार जिनेश्वर, कीनो भवि हित-कारी। धर्मचक्र आगौनि चलै प्रभु, केवल महिमा भारी॥ पंद्रह पांति कमल पंद्रह जुग, सुन्दर हेम सँम्हारे। अंतरीछ डग सहित चलैं प्रभु, चरणांबुजतल धारे ॥ १८ ॥ मिटि उपसर्ग भए प्रभु केवलि, भूमि पवित्र सुहाई। सो अहिक्षेत्र थप्यो सुर नर मिल, पूजकको सुखदाई॥ नाम लेतँ सब विघन विनाशै, संकट क्षणमें चूरै। वंदन करत बढ़ै सुख संपति

सुमिरत आसा पूरै ॥ १९ ॥ जो अहिक्षेत्र विधान पढै नित, अथवा गाय सुनावै। श्रीजिनभक्ति धरै मनमें दिढ़, मन-वांछित फल पावै ॥ जुगल वेद बसु एक अंक गणि, बुधजन बत्सर जान्यो। मारग शुक्ल दशैं रवि वासर, 'आसाराम' बखान्यो ॥ २० ॥

९। बारह भावना भूधरदासकृत ।

दोहा—राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥ १ ॥

दलबलदेई देवता, मात पिता परिवार ।
मरती बिरियां जीवको, कोइ न राखन हार ॥ २ ॥
दामबिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान ॥ ३ ॥
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय ।
यूं कबहू इस जीवका, साथी सगा न कोय ॥ ४ ॥
जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय ।
पर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥ ५ ॥

दिपै चामचादरमढ़ी, हाड़ पींजरा देह ।
भीतर यासम जगतमैं, और नहीं घिनगेह ॥ ६ ॥
सोरठा—मोहनींदके जोर, जगवासी घूमैं सदा ।
कर्मचोर चहुं ओर, सरबस लूटैं सुध नहीं ॥ ७ ॥
सतगुर देंय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं ।
तब कछु बनै उपाय, कर्मचोर आवत रुकैं ॥ ८ ॥
दोहा—ज्ञानदीप तप तेल भर, घरशोधै भ्रम छोर ।
याविध बिन निकसैं नहीं पैठे पूरब चोर ॥ ९ ॥

पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इंद्री विजय, धार निर्जरा सार ॥ १० ॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादितैं, भरमत है बिन ज्ञान ॥ ११ ॥
जाचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन।
बिन जाचें बिन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन ॥ १२ ॥
धनकनकंचन राजसुख, सबै सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसारमें एक जथारथ ज्ञान ॥ १३ ॥ ❀ इति ●

१० । अथ निर्वाणकांड भाषा ।

दोहा—वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

अष्टापद आदीसुरस्वामि । बासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥
नेमिनाथस्वामी गिरनार । बंदौं भाव भगति उरधार ॥ २ ॥
चरम तीर्थंकर चरम शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥
शिखरसमेद जिनेसुर बीस । भावसहित बंदौं निशदीस

॥ ३ ॥ वरदतराय रु इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥ नगरतारवर मुनि उंठकोड़ि[1] । बंदौं भावसहित कर जोड़ि ॥ ४ ॥ श्रीगिरनारशिखर विख्यात । कोडि बहत्तर अरु सौ सात ॥ संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय । अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥ ५ ॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाडनरिंद आदि गुण-धीर ॥ पांचकोडि सुनि मुक्तिमझार । पावागिरि बंदौं निर-धार ॥ ६ ॥ पांडव तीन द्रविडराजान । आठकोडि सुनि

[1]—साडे तीन किरोड ।

मुकति पयान ॥ श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस । भावसहित वंदौं निशदीस ॥ ७ ॥ जे बलभद्र मुकतिमें गये। आठकोडि मुनि औरहु भये ॥ श्रीगजपंथशिखर सुविशाल। तिनके चरण नमूं तिहुंकाल ॥८॥ राम हनू सुग्रीव सुडील। गवगवाख्य नील महानील ॥ कोडि निन्याणवै मुक्तिपयान । तुंगीगिरि वंदौं धरि ध्यान ॥ ९ ॥ नंग अनंगकुमार सुजान । पांचकोडि अरु अर्ध प्रमान ॥ मुक्ति गये सोनागिरिशीश । ते वंदौं त्रिभुवनपति ईश ॥ १० ॥ रावणके सुत आदिकुमार। मुक्ति

गये रेवातट सार ॥ कोडि पंच अरु लाख पचास । ते बंदौं धरि परम हुलास ॥ ११ ॥ रेवानदी सिद्धवरकूट । पश्चिम-दिशा देह जहँ छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार । ऊठकोडि बंदौं भवपार ॥ १२ ॥ बड़वानी बडनयर सुचंग । दक्षिण दिश गिरिचूल उतंग ॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते बंदौं भवसायर तर्ण ॥ १३ ॥ सुवरणभद्र आदि मुनि चार । पावा-गिरिवर शिखरमझार ॥ चलना नदी तीरके पास । मुक्ति गये बंदौं नित तास ॥ १४ ॥ फलहोडी बडगाम अनूप । पश्चिम

दिशा द्रोणगिरि रूप ॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां। मुक्ति गये बंदौं नित तहां ॥ १५ ॥ बाल महाबाल मुनि दोय। नागकुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार। ते बंदौं नित सुरत सँभार ॥ १६ ॥ अचलापुरकी दिश ईशान। तहां मेढ़्गिरि नाम प्रधान ॥ साढे तीन कोडि मुनिराय। तिनके चरण नमूं चित लाय ॥ १७ ॥ वंसस्थल वनके ढिग होय। पश्चिमदिशा कुंथुगिरि सोय ॥ कुलभूषण दिशभूषण नाम। तिनके चरणनि करूं परणाम ॥ १८ ॥ जसरथराजाके सुत

कहें। देश कलिंग पांचसौ लहे॥ कोटि शिला मुनि कोटि-प्रमान। बंदन करूं जोर जुगपान॥ १९॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद। रेसंदीगिरि नयनानंद॥ वरदत्तादि पंच ऋषि-राज। ते बंदौं नित धरमजिहाज ॥२०॥ तीन लोकके तीरथ जहां। नितप्रति वंदन कीजे तहां॥ मन वच कायसहित सिर-नाय। वंदन करहिं भविक गुणगाय॥ २१॥ संवत सतरहसौ इकताल। आश्विनसुदि दशमी सुविशाल। 'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल। जय निर्वाणकांड गुणमाल॥ २२ ॥ इति॥

११ । आलोचना पाठ ।

दोहा—वंदों पांचों परम गुरु, चौवीसौं जिनराज ।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धकरनके काज ॥ १ ॥

सखी छंद चौदहमात्रा ।

सुनिये जिन अरज हमारी । हम दोष किये अति भारी ॥
तिनकी जु निरवृत्ति काजै । तुमसरन लही जिनराजै ॥ २ ॥
इक वे ते चउ इंद्री वा । मन रहित सहित जे जीवा ॥
तिनकी नहिं करुना धारी । निरदइ ह्वै घात विचारी ॥ ३ ॥

समरंभ समारभ आरँभ । मनवचतन कीने प्रारँभ ॥
कृत कारित मोदन करिकैं । क्रोधादि चतुष्टय धरिकै ॥ ४ ॥
शत आठ जु इम भेदनतैं । अघ कीने परछेदनतें ॥
तिनकी कहुं कोलौं कहानी, तुम जानतु केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
विपरीत एकांत विनयके । संशय अज्ञान कुनयके ॥
वश होय घोर अघ कीने । बचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥
कुगुरुनकी सेवा कीनी । केवल अदयाकरि भीनी ॥
याविध मिथ्यात भ्रमायो । चहुंगति मधि दोष उपायो ॥ ७ ॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी । परवनितासौं दृग जोरी ॥
आरंभपरिग्रहभीनो । पुनपाप जु या विध कीनों ॥ ८ ॥
सपरस रसना घ्राननको । चखु कान विषय सेवनको ॥
बहु करम किये मन-मानी । कछु न्याय अन्याय न जानी ॥९॥
फल पंच उदंबर खाये । मधु मांस मद्य चित चाये ॥
नहिं अष्ट मूलगुणधारे । विसनन सेये दुखकारे ॥ १० ॥
दुइ वीस अभख जिन गाये । ते भी निशिदिन भुंजाये ॥
कछु भेदाभेद न पायो । ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥ ११ ॥

अनँतान जु बंधी जानो । प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥
संज्वलन चौकरी गुनिये । सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि तिवेदसँजोग ॥
पनवीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप किये हम ॥ १३ ॥
निद्रावश शयन कराई । सुपनेमधि दोष लगाई ॥
फिर जागि विषय-वन धायो । नानाविध विषफल खायो ॥१४॥
कियेऽहार निहार विहारा । इनमें नहिं जतन विचारा ॥
बिन देखी धरी उठाई । विनशोधी भोजन खाई ॥ १५ ॥

तब ही परमाद सतायो । बहुविध विकलप उपजायो ॥
कछु सुधिबुधि नाहीं रही है । मिथ्यामति छाय गई है ॥१६॥
मरजादा तुम ढिग लीनी । ताहूमें दोष जु कीनी ॥
भिन भिन अब कैसैं कहिये । तुम ज्ञानविषै सब पइयें ॥१७॥
हा ! हा ! मैं दुठ अपराधी । त्रसजीवनराशि विराधी ॥
थावरकी जतन न कीनी । उरमें करुना नहिं लीनी ॥ १८ ॥
पृथिवी बहु खोद कराई । महलादिक जागाँ चिनाई ।
पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो । पंखातैं पवन विलोल्यो ॥१९॥

हा ! हा ! मैं अदयाचारी। बहु हरितकाय जु विदारी ॥
तामधि जीवनके खंदा। हम खाये धरि आनंदा ॥ २० ॥
हा मैं परमाद बसाई। विन देखे अगनि जलाई ॥
तामधि जे जीव जु आये। ते हू परलोक सिधाये ॥ २१ ॥
बीध्यो अन राति पिसायो। ईंधन विन सोधि जलायो ॥
झाडू ले जागाँ बुहारी। चीटि आदिक जीव विदारी ॥ २२ ॥
जल छानि जीवानी कीनी। सो हू पुनि डारि जु दीनी ॥
नहिं जलथानक पहुंचाई। किरिया विन पाप उपाई ॥ २३ ॥

जल मल मोरिन गिरवायो । कृमिकुल बहु घात करायो ॥
नदियन बिच चीर धुवाये । कोसनके जीव मराये ॥ २४ ॥
अन्नादिक शोध कराई । ता मैं जु जीव निसराई ॥
तिनका नहिं जतन कराया । गरियालैं धूप डराया ॥ २५ ॥
पुनि द्रव्य कमावन काज । बहु आरंभ हिंसा साज ॥
कीये तिसनावश भारी । करुना नहिं रंच विचारी ॥ २६ ॥
इत्यादिक पाप अनंता । हम कीने श्रीभगवंता ॥
संतति चिरकाल उपाई । बानीतैं कहिय न जाई ॥ २७ ॥

ताको जु उदय जब आयो। नानाविधि मोहि सतायो॥
फल भुंजत जिय दुख पावै। बचतैं कैसैं करि गावैं॥ २८॥
तुम जानत केवलज्ञानी। दुख दूर करो शिवथानी॥
हम तो तुम शरन लही है। जिन तारन विरद सही है॥२९॥
जो गांवपति इक होवै। सो भी दुखिया दुख खोवै॥
तुम तीन भवनके स्वामी। दुख मेटो अंतर जामी॥ ३०॥
द्रोपदिको चीर बढायो। सीतापति कमल रचायो॥
अंजनसे किये अकामी। दुख मेट्यो अंतरजामी॥ ३१॥

मेरे अवगुन न चितारो । प्रभु अपनो विरद निहारो ॥
सब दोषरहित करि स्वामी । दुख मेटहु अंतरजामी ॥ ३२ ॥
इंद्रादिक पदवी न चाहूं । विषयनिमें नाहिं लुभाऊं ॥
रागादिक दोष हरीजे । परमातम निजपद दीजे ॥ ३३ ॥
दोहा—दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोहि ।
सब जीवनकै सुख बढै, आनँद मंगल होय ॥ ३४ ॥
अनुभवमाणिकपारखी, जौंहरी आप जिनंद ।
येही वर मोहि दीजिये, चरनसरन 'आनंद' ॥ ३५ ॥

इति आनंदकृत आलोचना पाठ समाप्त ।

स्वर्गीय पं० महाचंद्रजीकृत

१२। सामायिक पाठ।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी।
जन्ममरण नित किये पापको ह्वै अधिकारी॥
कोड़ि भवांतरमांहि मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक॥ १॥
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय-योगकी गुप्तिविना लभ॥

आप समीप हजूरमांहि मैं खडो खडो सब ।

दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥ २ ॥

क्रोधमानमदलोभमोहमायावशि प्रानी ।

दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥

बिना प्रयोजन एकेंद्रिय वितिचउपंचेंद्रिय ।

आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥ ३ ॥

आपसमें इकठौर थापि करि जे दुख दीने ।

पेलि दिये पगतलें दाबि करि प्राण हरीने ॥

आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक ।
अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक ॥ ४ ॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय ।
तिनके जे अपराध भये ते छिमा छिमा किय ॥
मेरे जे अब दोष भये ते छमहु दयानिधि ।
यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्ममांहि विधि ॥ ५ ॥

इति प्रथम प्रतिक्रमण कर्म ॥ १ ॥

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे ।

तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥
सो सब झूंठो होउ जगतपतिके परसादै ।
जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख दुःख न लाधै ॥ ६ ॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ ।
किये पाप अघ ढेर पापमति होय चित्त दुठ ॥
निंदूं हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं ।
सब विध धर्मउपाय पाय फिरि पापहि करहूं ॥ ७ ॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी ।

सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी ॥
जिनवचनामृत धार समावर्तैं जिनवानी ।
तो हू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी ॥ ८ ॥
इंद्रिय लंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब ।
अज्ञानी जिम करै तिसी विध हिंसक ह्वै अब ॥
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले ।
ते सब दोष किये निंदूं अब मन वच तोले ॥ ३ ॥
आलोचन-विधि-थकी दोष लागे जु घनेरे ।

ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे ॥

बारबार इसभांति मोह मद दोष कुटिलता ।

ईर्षादिकतैं भये निंदये जे भयभीता ॥ १० ॥

इति द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म ॥ २ ॥

सब जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है ।

सब जिय मोसम समता राखो भाव लग्यो है ॥

आर्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक ।

संजम मो कब शुद्ध होय यह भावबधायक ॥ ११ ॥

पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पत ।
पंचहिं थावरमांहि तथा त्रस जीव बसैं जित ॥
बेइंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रिय मांहि जीव सब ।
तिनतैं क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अब ॥ १२ ॥
इस अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु तृण ।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं समगण ॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी ।
सामायिकका काल जितै यह भाव नवीनी ॥ १३ ॥

मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो ।
और सबै मम भिन्न जानि समता रस भीनो ॥
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह ।
मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कर्‍यो गह ॥ १४ ॥
मैं अनादि जगजालमांहि फंसि रूप न जाण्यो ।
एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो ॥
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी ।
भवभवको अपराध क्षमा कीज्यो करि मरजीं ॥ १५ ॥

इति समताभाव तृतीय कर्म ॥ ३ ॥

नमौं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको ।
संभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्मको ॥
सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पार कर ।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ॥ १६ ॥
श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भवजास शुद्धकर ।
श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर ॥
पुष्पदंत दमि दोष कोश भविपोष रोषहर ।

शीतल शीतलकरण हरण भवताप दोषहर ॥ १७ ॥
श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन ।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन ॥
विमल विमलमति देन अंतगत है अनंत जिन ।
धर्म शर्मशिवकरण शांतिजिन शांति विधायिन ॥१८॥
कुंथु कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जालहर ।
मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर ॥
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन ।

नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथमाहि ज्ञानधन ॥ १९ ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्वउपलसम मोक्षरमापति ।
वर्द्धमान जिन नमू वमू भवदुःख कर्मकृत ॥
या विध मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर ।
स्तवूं नमूं हूं बारबार वंदू शिवसुखकर ॥ २० ॥

इति स्तवन चौथा कर्म ॥ ४ ॥

वंदू मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति ।
वर्द्धमान अतिवीर वंदि हूं मनवचतनकृत ।

त्रिशला तनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं ।
वंदूं नितप्रति कनकरूप तनु पापनिकंदूं ॥ २१ ॥
सिद्धारथ नृपनंद दुंददुख दोष मिटावन ।
दुरितदवानल ज्वलितज्वाल जगजीव उधारन ॥
कुंडलपुर करि जन्म जगतजिय आनँदकारन ।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सबही दुख टारन ॥ २२ ॥
सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय ।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥

दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन ।
आप बसे शिवमाहिं ताहि वंदों मन वच तन ॥ २३ ॥
जाके वंदन थकी दोष दुख दूर हि जावै ।
जाके वंदनथकी मुक्तितिय सनमुख आवै ॥
जाके वन्दनथकी वन्द्य होवै सुरगनके ।
ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥
सामायिक षट्कर्ममाहिं वन्दन यह पंचम ।
वंदौं वीरजिनेंद्र इन्द्रशतवंद्य वन्द्य मम ॥

जन्म मरण भय हरो करो अघ शांति शांतिमय ।
मैं अघकोश सुपोष दोषको दोश विनाशय ॥ २५ ॥

इति पंचम वंदनकर्म ॥ ५ ॥

कायोत्सर्गविधान करूं अंतिम सुखदाई ।
कायतजनमय होय काय सबको दुखदाई ॥
पूरव दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं ।
जिनगृहवन्दन करूं हरूं भवपापतिमिर मैं ॥ २६ ॥
शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं ।

आवर्तादिक क्रिया करूं मनवचमद हरिकैं ॥
तीनलोकजिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम ।
कृत्रिम है द्वय अर्द्धद्वीपमाहिं वन्दों जिम ॥ २७ ॥
आठ कोड़िपर छप्पन लाख जु सहस सत्यानूं ।
च्यारि शतकपर असी एक जिन मंदिर जानूं ॥
व्यंतर ज्योतिषिमाहिं संख्य रहिते जिनमन्दिर ।
ते सब बंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥ २८ ॥
सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटायक ।

सामायिकसम नाहिं और कोउ मैत्री–दायक ॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक ।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुख हानक ॥ २९ ॥
जे भवि आतमकाज–करण उद्यमके धारी ।
ते सब काज विहाय करौ सामायिक सारी ॥
राग रोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब ।
बुध 'महाचन्द्र' विलाय जाय.तातैं कीज्यो अब ॥ ३० ॥

इति कायोत्सर्ग षष्ठकर्म ॥ ६ ॥

इति सामायिक पाठ समाप्त ।

१३ । भावनाद्वात्रिंशतिका ।

सोरठा—दुखनाशक जिनराय, बसो हृदयमें मम सदा ।
नाशो विषय कषाय, इस संसारी जीवके ॥

शिखरनी छंद ।

सुमैत्री जीवोंमें सुगुणि गणको देख उमगूं ।
दयाको ही धारूं दुखित जनको देख करके ॥
उपेक्षा हो मेरे मुदित मनमें क्रूर जनसे ।
सदा स्वामिन् ! ऐसी परिणति रहै बोध बलसे ॥१॥

मेरा प्रभो ! आत्म अनंत शक्ति-धारी सदा कर्मकलंकमुक्त । हो जाउँ मैं भिन्न; शरीरसे भी, ऐसी प्रभो ! हो मम शक्ति व्यक्त ॥ २ ॥ दुःखों सुखों शत्रु व बंधुओंमें, मेले अकेले घरमें बनोंमें । मेरे सदा नाथ समानता हो, विनाश निःशेष ममत्व-का हो ॥ ३ ॥ पादाब्ज तेरे मनमाहिं मेरे, गये उकेरे जड़ही गये वा । भानू सरीखे तम नाशकारी, प्रभो ! सदा मैं उनका पुजारी ॥ ४ ॥ छोटे-बड़े जीव घने विदारे, प्रमादसे हैं चलते हुएने । वा दुःख दीने यदि जंतुओंको, हो देव ! मेरे वह

पाप मिथ्या ॥ ५ ॥ कुमार्गगामी पथमुक्ति भूला, कषाय इंद्री वश बुद्धिनाशी । जो खो लिया है स्वचरित्र मैंने, हो देव मेरा वह पाप मिथ्या ॥६॥ मनोवचःकाय कषायसे जो, हैं पाप कीने भवदुःखमूल । स्वकीय निंदा गर्हा दिखाके, करूं उन्हें नाश समस्तको ही ॥ ७ ॥ अतिव्यती वा अतिचार मैंने, तथा अनाचार चरित्रमें जो । किये कुबुद्धी व प्रमादसे हैं, संताप भारी उनका मुझे है ॥ ८ ॥ मनोवचःकाय पवित्रताका, उलंघ होवे कुछ अंशमें तो । अतिव्यती व अतिचार

होंगे, वही अनाचार समग्र हो तो ॥ ९ ॥ जो अर्थ-मात्रा-पद-वाक्य-हीन, की हो स्तुती हे जिनवाणि ! मैंने । वे पाप मेरे च्युत हों सवेरा, सर्वज्ञ होवे अरु आत्म मेरा ॥ १० ॥ हे देवि चिंतामणि नाम तेरा, बना सदा हूं चरणाब्ज-चेरा । श्रद्धा तथा ज्ञान-चरित्र-वृद्धी, दो सौख्यसिद्धी व समाधिको भी ॥ ११ ॥ किया गया याद मुनीन्द्रसे जो, पूजा गया देव नरेंद्रसे जो । गाया गया वेद-पुराणमें जो, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १२॥ जो दर्शनज्ञान-सुख-स्वभावी, समस्त संसार-

विकारनाशी। जो ध्यानसे गम्य परात्म-संज्ञ, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १३ ॥ विध्वंस-कर्ता भव-दुःखका जो, आलोक-कर्ता जगमध्यका जो। दृष्टव्य जो योगि समाधिसे है, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १४ ॥ जो मोक्षका मार्ग बता रहा है, संसारके दुःख सुदूर जासे। त्रैलोकदृष्टा तनु-ताप-हीन, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १५ ॥ दुःखी किये हैं जग-जीव सारे, रागादि ऐसे जिसके नहीं हैं। ज्ञानी अतींद्री अनपाय हैं जो, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १६ ॥ कल्याणकारी

जिसका स्वरूप, सुशुद्ध वा बुद्ध अबद्ध है जो । ध्याया हुआ कर्म-कलंक खोता, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १७ ॥ छूते नहीं हैं जिसको कलंक, जैसे सदा ध्वांत न सूर्यको है । जो ध्रौव्य निर्दोष अनेक एक, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥१८॥ जग-प्रकाशी रवि-तेजको भी, जो है दबाता उस ज्ञान-युक्त । तथा सदा हैं स्थिर आतमैं जो, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ १९ ॥ संसार देता जिसमें दिखाई, निर्भ्रांत भाई ! उस ज्ञानयुक्त । शुद्धस्वरूपी शिव शांत नित्य, सो देव देवें मुझको

सुशांति ॥ २० ॥ ज्वाला जलाती तरु-जाल जैसे, तैसे विनाशे जिन मान मूर्छा । विषाद निद्रा भय शोक चिंता, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ २१ ॥ न भूमि चौकी तृण वा शिला भी, आते कभी काम समाधिमें हैं । विशुद्ध आत्मा जित-राग-रोष माना गया किंतु सुधी जनोंसे ॥ २२ ॥ है तो नहीं आसन ध्यानकारो, ना लोक पूजा नहिं संघ मेला । अध्यात्म-संलीन सुभव्य होओ, छोड़ो सदा बाह्य-कुवासनाको ॥ २३ ॥ मेरा नहीं बाह्य पदार्थ कोई, न मैं हुआ हूं उनका कभी भी ।

ऐसा विचारो मनमैं सदा ही, हो बाह्यको छोड सुमुक्तिपात्र
॥ २४ ॥ आत्मा सदा देख स्व आतमैं रे ! हो दर्शन-ज्ञान
मयी विशुद्ध । एकाग्रचेता मुनि क्या कहीं भी, पाता नहीं है
सुसमाधिको रे ! ॥ २५ ॥ आत्मा सदा नित्य व एक मेरा,
ज्ञान-स्वभावी अकलंक भी है । पदार्थ सारे जगके विनाशी,
उत्पन्न होते निज हेतुसे हैं ॥ २६ ॥ संबंध रक्खै न शरीरसे
जो, पुत्रादि होने उसके लगे क्यों ? । जो कायसे खाल उतार
डाले, तो रोमकूवे किसमैं रहैंगे ? ॥ २७ ॥ प्राणी सदा दुःख

अनेक पाता, संयोगसे बाह्य कुवस्तुओंके। त्रियोगसे योग सु त्याग देवो, जो मुक्ति संयोग सुशीघ्र चाहो ॥ २८ ॥ दो छोड संकल्प-विकल्प जाल, संसारमें हैं नित जो रुलाते। विभिन्न देखो निज आत्मको रे! सुलीन होओ परमात्ममें रे ॥ २९ ॥ जो कर्म तूने पहिले किये हैं, देते तुझे हैं फल आज वे ही। देने लगे जो फल अन्य कोई, स्वयं किये कर्म हि व्यर्थ होंगे ॥ ३० ॥ अतः विचारो मनमाहिं ऐसें, स्वकर्मको छोड न अन्य कोई। देता किसीको कुछ भी नहीं है, निजात्मका ध्यान न

क्यों करूं मैं ॥२१॥ गया पूजा भाई, अमितगतिसे देव नित जो। विवेकी निर्दोषी, सु अतिशयसे है सहित जो ॥ करैंगे जो प्राणी, मन-कमलमैं ध्यान उसका। सदाको पावैंगे, चरम-पद जैसे विभवको ॥ ३२ ॥ "अमर" छंद दो-तीससे, परमातमका ध्यान। एकचित्त हो जो करै, पावै पद निर्वान ॥ ३३ ॥

१८। श्रीमहावीराष्टक।

जिन्होंकी प्रज्ञामें चिद अचिद भाते दरशवत्। समुत्पाद-ध्रौव्य-व्यययुत लसाते सतत हैं॥ जगद्दृष्टा मार्गप्रगट

करते भानुसम जो। हमारे नेत्रोंको सतत सुखदा वीर जिन
वे ॥ १ ॥ विनिर्दोषी आंखैं, चलन विन भातीं कमल सीं।
जताती जीवोंको, अविकृतपना है हृदयका॥ जिन्होंकी काया
भी अति विमल है, शांतिमय है। हमारे नेत्रोंको० ॥ २ ॥
नमाते माथेको, मुकुट मणिधारी, चरणमें। बढाते शोभाको
हरषधर आये शरणमें॥ मिटाते वाधाको, स्मरण करके जीव
जिनका। हमारे० ॥ ३ ॥ जिन्होंकी पूजासे, प्रमुदितमना
मेंडक पुरा। गया था जल्दी ही, अमरपुरमें पा गुणनको ॥

लहाते सेवासे, शिवपुर सभी जीव जिनकी। हमारे० ॥ ४॥
दिपाते सोनेसे, त्रिरहित तनू, दीख पडते। अनेकों एकोंसे,
कुंवरवर सिद्धार्थ नृपके ॥ अजन्मा हैं तो भी, विगतभय हैं
ज्ञानमय जो। हमारे० ॥ ५ ॥ जिन्होंकी वाग्गंगा, विविधनय
कल्लोल युत है। कराती जीवोंको सुमति जलसे स्नान नित
है॥ अभी भी भाती है सुबुधजन हंसों सहित ही। हमारे०।
॥६॥ जगज्जेता जो हैं, स्मर सुबलशाली सकलसे। पछाड़ा दे
मारा, लडकपनमें ही स्वबलसे॥ सदाको पाया है, प्रशमपदका
राज्य जिनने। हमारे० ॥७॥ चिकित्सा आश्चर्यान्वित करत

हैं मोहरुगकी । विना बाँछा भ्राता, प्रकट यश हैं, मोद करते ॥ अनाथोंके साथी, भवभय मिटाते सतत जो । हमारे० ॥ ८ ॥

दोहा—भागचंद्र संस्कृतविषै, किया जगत-हित-हेत ।
'अमर' भक्तिलवलीन हो, हिंदि किया निज-हेत ॥ ९ ॥

१५ । मंगलाष्टक ।

संघसहित श्रीकुंदकुंदगुरु, वंदन हेत गये गिरनार । वाद पर्यो तहँ संशयमतिसों, साक्षी वदी अंबिकाकार ॥ सत्य पंथ निरग्रंथ दिगंबर', कही सुरी तहँ प्रगट पुकार । सो गुरुदेव वसौ उर मेरे, विघनहरण मंगलकरतार ॥ १ ॥ स्वामि

समंतभद्रमुनिवरसौं, शिवकोटी हठ कियो अपार। वंदनकरो शंभुपिंडीको, तब गुरु रच्यौ स्वयंभू भार ॥ वंदन करत पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिनचंद्र उदार। सो० ॥ २ ॥ श्री अकलंकदेव मुनिवरसौं, वाद रच्यो जहँ बौद्ध विचार। तारा देवी घटमें थापी, पटके ओट करत उच्चार ॥ जीत्यो स्यादवाद बल मुनिवर, बौद्धबोध तारामदटार। सो० ॥ ३ ॥ श्रीमत विद्यानंदि जबै श्रीदेवागमथुति सुनी सुधार। अर्थहेत पहुंच्यो जिनमंदिर, मिल्यो अर्थ तहँ सुखदातार ॥ तब व्रत परमदिगंबरके धर, परमतको कीनो परिहार ॥ सो० ॥ ४ ॥ श्रीमत

मानतुंग मुनिवरपर, भूप कोप जब कियो गँवार। बंद कियौ तालोंमें तबही, भक्तामर गुरु रच्यो उदार॥ चक्रेश्वरी प्रगट तब ह्वैकैं, बंधन काट कियौ जयकार॥ सो०॥ ५॥ श्रीमत वादिराज मुनिवरसों, कह्यो कुष्टि भूपति जिहँबार। श्रावक सेठ कह्यो तिह अवसर, मेरे गुरु कंचनतनधार॥ तबही एकीभाव रच्यौ गुरु, तन सुवरणदुति भयौ अपार। सो०॥ ६॥ श्रीमत कुमुदचंद्र मुनिवरसों, वाद पर्‌यो जहँ सभामझार। तबही श्रीकल्यानधामथुति, श्रीगुरु रचना रची अपार। तब प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार। सो०॥ ७॥ श्रीमत

अभयचंद्र गुरुसों जब, दिल्लीपति इम कही पुकार । कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरो मेरो मतसार ॥ तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय, तुरत हर्यो ताकोमद-भार । सो० ॥ ८ ॥

दोहा—विघन-हरण मंगल-करण, बांछित फल-दातार ।
'वृन्दावन' अष्टक रच्यो, करो कंठ सुखकार ॥ ९ ॥

१६ । श्रीचौबीसतीर्थंकरोंके चिह्न ।

वृषभनाथका 'वृषभ' जु जान । अजितनाथके 'हाथी' मान ॥
संभवजिनके 'घोडा' कहा । अभिनंदनपद 'बंदर' लहा ॥ १ ॥
सुमतिनाथके 'चकवा' होय । पद्मप्रभके 'कमल' जु जोय ॥

जिनसुपासके 'सथिया' कहा । चंद्रप्रभपद 'चंद्र' जु लहा ॥२॥
पुष्पदंतपद 'मगर' पिछान । 'कल्पवृक्ष' शीतलपद मान ॥
श्रीश्रियांसपद 'गेंडा' होय । वासुपूज्यकै 'भैंसा' जोय ॥ ३ ॥
विमलनाथपद 'शूकर' मान । अनँतनाथके 'सेही' जान ॥
धर्मनाथके 'वज्र' कहाय । शांतिनाथपद 'हिरन' लहाय ॥ ४ ॥
कुंथुनाथके पद 'अज' चीन । अरजिनके पद चिह्न जु 'मीन' ॥
मल्लिनाथ पद 'कलसा' कहा । मुनिसुव्रतके 'कछुआ' लहा ॥५॥
'लालकमल' नमिजिनके जोय । नेमिनाथ पद 'संख' जु होय ॥
पार्श्वनाथके 'सर्प' जु कहा । वर्द्धमानपद 'सिंह' हि लहा ॥इति॥

सुलभजैन-ग्रंथमाला।

आजकल बहुतसे धन-लोलुपी बुकसेलर पतले कागज और बारीक अक्षरोंमें मांसके बेलनसे अनेक ग्रन्थ छपा छपाकर उनकी दुगुणी तिगुणी न्योछावर रखकर लंबे चौडे इस्तहार दे देकर भोले भाले जैनी भाइयोंको ठग रहे हैं, और महा अपवित्रतासे छपेहुये ग्रंथोंका प्रचार कर रहे हैं, इसकारण संस्थाने यह 'सुलभ जैनग्रंथ-माला' प्रकाशित करना प्रारंभ किया है। इस ग्रंथ-मालामें दर्शन पाठ सूत्र भक्तामरसे आदि लेकर हरिवंशपुराण पद्मपुराण आदि बड़े २ भाषा ग्रंथ सर्व साधारण भाइयोंके हितार्थ छपाकर बहुत थोड़ी न्योछावरमें देनेका बीड़ाउ ठाया है। अतः सब भाइयोंको सबसे सस्ती न्योछावरमें कपडेके बेलनसे चिकने पुष्ट कागजोंमें बडे २ अक्षरोंमें पवित्रताके साथ छपे हुये ग्रन्थ इसी संस्थासे लेना चाहिये, संस्थाकी बराबर सस्ती